और हम कह भी नहीं पाते!

राजाबाबू ठाकुर

अक्सर जब स्कूल के बाहर का कोई व्यक्ति, विशेष तौर से शिक्षा जगत से सम्बन्धित जैसे सामाजिक संस्थाओं के लोग किसी सरकारी स्कूल में विज़िट पर जाते हैं तो उन्हें एक-न-एक शिक्षक बच्चों को मारते या डाँटते मिल ही जाता है। ऐसे में यह स्थिति बहुत ही असहज हो जाती है क्योंकि चाहकर भी व्यक्ति उस शिक्षक से विभिन्न कारणों की वजह से, जैसे शिक्षकों के नाराज़ हो जाने का डर, कुछ कह नहीं पाता। यदि कभी-कभार वह कुछ हिम्मत करके बड़ी ही दबी ज़बान में कुछ कह भी देता है तो अक्सर उसका शिक्षकों पर कोई असर ही नहीं होता। बल्कि मुझे तो यह महसूस हुआ है कि कुछ शिक्षक जो शायद सामान्य दिनों में बच्चों के साथ ऐसा व्यवहार नहीं करते होंगे, वे किसी बाहरी व्यक्ति के आने पर अपना रौब दिखाने के लिए बच्चों को डाँटने और मारने लगते हैं।

मैं कई सामाजिक संस्थाओं से जुड़ा रहा हूँ और कई बार स्कूलों में शिक्षकों के साथ काम के दौरान इस

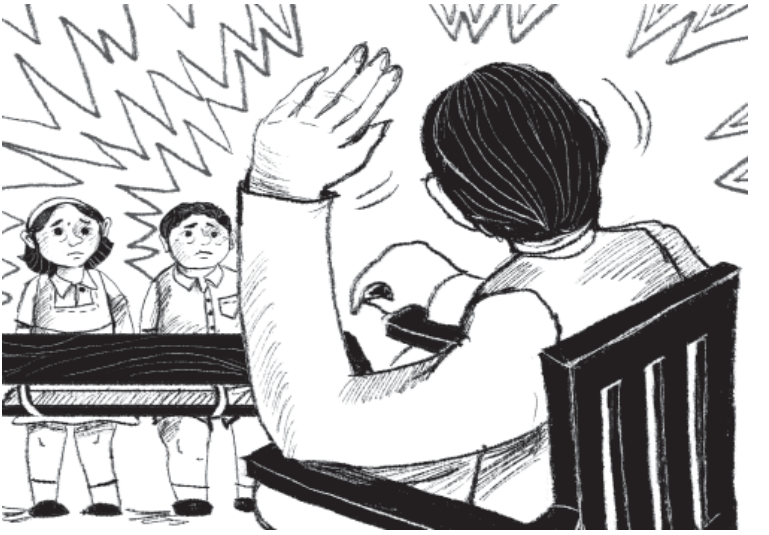

तरह की स्थिति का सामना किया है। शुरुआत में इस तरह की स्थिति में मैं चुप रह जाता था क्योंकि लगता था कि आगे के काम में मुझे इन्हीं शिक्षकों की मदद की आवश्यकता होगी और टोकने से कहीं वे बुरा मानकर मुझे अगली बार स्कूल आने से मना न कर दें। कभी इस डर से भी चुप रह जाता था कि कहीं ये मेरे बारे में अन्य शिक्षकों के मन में गलत धारणा न बना दें। लेकिन जब यह सब ज़्यादा ही खटकने लगा तब मैंने शिक्षकों से पिटाई और भय पर बात करना शुरू की। हालाँकि, शिक्षकों से यह बात कटाक्ष के रूप में या एकदम सीधे कहने की बजाय अलग-अलग तरीके से उठाने की कोशिश करता था। चूँकि सभी शिक्षक एक-समान नहीं होते, उनकी मनोदशा व परिस्थितियाँ समान नहीं होतीं, ऐसे में मुझे बहुत ही एहतियात के साथ, सधे हुए शब्दों में और कुछ उदाहरण व तार्किक कारण देते हुए उनसे बात करनी होती थी।

बच्चों के साथ ऐसा व्यवहार क्यों?

आगे बातचीत करने से पहले मैं अपने विचार साझा करना चाहूँगा कि आखिर शिक्षक या अन्य लोग बच्चों से इस प्रकार का व्यवहार क्यों करते हैं। पहला कारण हो सकता है, अहम शक्ति का प्रदर्शन। मैं ज़्यादा शक्तिशाली हूँ, तुम छोटे और कमज़ोर हो इसलिए मैं तुम्हें मार सकता हूँ, डाँट सकता हूँ या जो सज़ा मैं चाहूँ, दे सकता हूँ।

दूसरा, हो सकता है कि उनको लगता हो कि भय दिखाए बिना सिखाया नहीं जा सकता और उनके पास भय एवं दण्ड दिखाने का कोई अन्य विकल्प न होना। इस प्रकार की सोच हमारे ग्रन्थों में बहुत बलवती दिखती है, जैसे प्राचीन समय में आश्रमों में बच्चों द्वारा गलती करने पर या अनुशासन में न रहने पर उन्हें कठोर दण्ड देने का प्रावधान था। बच्चों को भूखा रखना, उन्हें रात में ठण्ड में बाहर खड़ा रखना, सबके काम उनसे करवाना आदि। कारण चाहे जो भी हों, हम किसी भी सोच से प्रेरित हो जब भय व दण्ड का इस्तेमाल करते हैं तो यह भूल जाते हैं कि इस व्यवहार का बच्चों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर, एवं उनके सीखने पर क्या प्रभाव पड़ रहा होगा।

इस पर गहन विचार करना होगा क्योंकि हमारा मुख्य उद्देश्य बच्चों को शारीरिक, भावनात्मक और मानसिक रूप से सशक्त करना है। उन्हें विचारवान बनाना है। हमारे द्वारा दण्ड देने से बच्चों की सीखने की क्षमता तो प्रभावित होती ही है जिसके बारे में हम आगे पढ़ेंगे, साथ ही, वे भी आगे चलकर इसी मानसिकता को अपना लेते हैं कि मारपीट करके सभी कार्य करवाए जा सकते हैं। इससे समस्त समाज का

तानाबाना ही बिगड़ने लगता है और अराजकता फैल सकती है।

भय व दण्ड के मस्तिष्क पर प्रभाव

जब हम कुछ सुनते हैं, पढ़ते हैं, या महसूस करते हैं तब हमारे मस्तिष्क में मौजूद करोड़ों न्यूरॉन्स एक-दूसरे से अन्तर्सम्बन्ध बनाते हैं। ये अन्तर्सम्बन्ध जितने अधिक बनते हैं, हमारी याददाश्त उतनी ही दृढ़ बनती है। जब कोई जानकारी हमारे मस्तिष्क में पहुँचती है तो सबसे पहले वह 'हिप्पोकैम्पस' नामक भाग में जाती है जहाँ पर हमारी एक अस्थाई स्मृति बनती है। यह स्मृति नव्वल्कुट (नियोकॉर्टेक्स) में स्थायी बनती है। लेकिन भय इस प्रक्रिया में हिप्पोकैम्पस की कार्यशीलता को इस तरह से प्रभावित करता है कि स्थायी स्मृति नहीं बन पाती और हमारी याददाश्त कमज़ोर हो जाती है।

स्कूलों में कार्य करने के दौरान मैंने डरा के रखे जाने वाले बच्चों में अक्सर इस तरह की समस्या को महसूस किया है। जैसे, एक शिक्षिका काफी गुस्से वाली थीं और उनकी कक्षा में बच्चों को बोलने की आज़ादी नहीं थी। मैंने देखा कि अधिकतर बच्चों को शिक्षिका द्वारा पढ़ाया हुआ समझने में समस्या होती थी और वे कुछ समय के लिए ही बातों को याद रख पाते थे। आज पढ़ाया हुआ जब बच्चों से अगले दिन बताने को कहा जाता तो वे कुछ भी नहीं बता पाते थे। फिर शिक्षिका का स्थानान्तरण हुआ और उनकी जगह दूसरी शिक्षिका आईं जो बच्चों के साथ अच्छा व्यवहार करती थीं, उनके साथ गतिविधियाँ करती थीं, पुस्तकालय का स्वतन्त्र रूप से

उपयोग करने देती थीं और बोलने व सवाल करने की पूरी आज़ादी देती थीं। जो बच्चे पूर्व शिक्षिका के सानिध्य में ज़्यादा लम्बे समय तक रहे थे, वे ऐसा माहौल मिलने के बावजूद किसी भी बात का जवाब नहीं देते थे, हमेशा डरे-डरे रहते थे और सवाल तो करते ही नहीं थे। जबकि वे बच्चे जो उनके सानिध्य में कम समय तक या बिलकुल नहीं रहे थे, काफी अच्छे से जवाब देते थे और सवाल भी बहुत पूछते थे।

असल में, जब हम डर या तनाव में होते हैं तो हमारे शरीर में मौजूद ग्रन्थियों द्वारा कुछ एंज़ाइमों का स्त्राव काफी बढ़ जाता है, जैसे एड्रिनल ग्रन्थि द्वारा कॉर्टिसोल व एड्रीनिलिन का अत्याधिक स्त्राव। वैसे तो हमेशा इन एंज़ाइमों का स्त्राव शरीर में होता ही रहता है और काफी महत्वपूर्ण कार्यों को सम्पन्न भी करता है, जैसे कॉर्टिसोल डर के समय प्रतिक्रिया देने में शरीर की मदद करता है, ब्लड प्रेशर कंट्रोल करता है, आदि। लेकिन डर के समय जब यह अधिक मात्रा में स्त्रावित होने लगता है तो पानी व नमक का प्रतिधारण (अंगों में इन पदार्थों का बढ़ जाना) करता है, ब्लड प्रेशर को बढ़ा देता है, शरीर की मांसपेशियों, ऊतकों व हड्डियों को नष्ट करने लगता है और मासिक धर्म के चक्र को भी प्रभावित करने लगता है। इसी प्रकार एड्रिनिलिन के अधिक स्त्राव से ध्यान में कमी आने लगती है।

शरीर की तमाम प्रक्रियाओं को समझने के बाद यह कहा जा सकता है कि भय के माहौल में सीखना सम्भव नहीं है। ऊपर लिखी जानकारी का आधार जनसत्ता में प्रकाशित दिलीप चुघ का लेख *बचपन: भय के माहौल में कोमल मन* है परन्तु मैंने बच्चों के ऊपर भय के इन प्रभावों को स्कूलों में अवश्य ही देखा है। तो क्यों हम भय से ही पढ़ाना और सिखाना चाहते हैं? क्यों इसके कुछ विकल्प नहीं खोजते?

शिक्षकों से भय पर बातचीत

पहला केस - एक बार मैं एक स्कूल गया। वहाँ ऐसे शिक्षक तलाशने थे जिनके साथ मिलकर मैं शिक्षण की नवीन पद्धतियों और शिक्षण सामग्री के माध्यम से कार्य कर सकूँ। सबसे पहले मैं प्रधानाध्यापक से मिला जो उस वक्त कक्षा-3 के बच्चों से वर्कबुक भरवा रहे थे। मैंने उन्हें अपना परिचय दिया और वहाँ आने का उद्देश्य बताया। इसी बीच बच्चों के शोर की आवाज़ आई तो उन्होंने बच्चों को डाँटते हुए चुप रहने को कहा। फिर वे मुझसे बातें करने लगे। इसी दौरान दो बच्चियाँ जो एक-दूसरे को अपनी वर्कबुक दिखा रही थीं, प्रधानाध्यापक के कोपभाजन का शिकार बन गईं। उन्होंने चिल्लाते हुए दोनों की पिटाई कर दी। यह देखकर मैं सन्न रह गया। सर से बहुत कुछ

बोलना चाहता था, पर चूँकि इस स्कूल में यह मेरा पहला दिन था इसलिए सिर्फ यही बोल पाया कि "अब रहने दीजिए, सर।" परन्तु इसके बाद मैं उस कक्षा में रुक न सका और सर से अन्य शिक्षक से मिलने जाने का बोलकर वहाँ से चल दिया।

इसके बाद मैं कक्षा-2 में पहुँचा जहाँ शिक्षिका बच्चों को काफी प्यार से समझाते हुए और बच्चों के दैनिक जीवन से जुड़ाव बनाते हुए पढ़ा रही थीं। बच्चे भी बहुत खुश दिख रहे थे। बीच-बीच में बच्चों द्वारा कुछ अनचाहा कर देने पर भी शिक्षिका उन्हें डाँटने की बजाय समझा रही थीं। मुझे यह कक्षा व शिक्षिका बहुत ही पसन्द आईं इसलिए उनके साथ ही आगे का कार्य करने का मन बनाया।

जब उस कक्षा से निकला तो मुझे प्रधानाध्यापक मिले जिनसे मैंने कहा, "सर, कक्षा-2 की शिक्षिका तो बहुत ही अच्छे से बच्चों को पढ़ाती हैं। उनकी कक्षा में बच्चे बहुत खुश थे और उनमें डर तो बिलकुल नहीं झलक रहा था, शायद इसलिए क्योंकि वे बच्चों को मारती व डाँटती नहीं हैं।" इस पर प्रधानाध्यापक ने मुस्कुराकर 'हाँ' में सर हिलाया।

इसके बाद मैं अन्य कक्षा में जा पहुँचा। जब वहाँ से लौट रहा था तो मैंने देखा कि एक बच्ची खड़ी होकर पानी पी रही थी और उसके हाथ से बोटल छूटकर गिर गई। सारा पानी प्रधानाध्यापक के ऊपर आ गिरा,

लेकिन सर ने बहुत ही प्रेम से उस लड़की से कहा, "बेटा, अच्छे से पानी पियो। देखो, अभी लग जाती।" यह देखकर मुझे बहुत अच्छा लगा। बाद में जब भी मैं उस स्कूल में गया तो मुझे प्रधानाध्यापक बच्चों को डाँटते हुए कभी नहीं दिखे।

मैं प्रधानाध्यापक व शिक्षिका की कक्षा के बच्चों में कुछ अन्तर देख पाया, जैसे प्रधानाध्यापक की कक्षा के बच्चों में डर व झिझक साफ दिख रही थी जबकि शिक्षिका की कक्षा के बच्चे स्वच्छन्द भाव से बिना किसी झिझक के न केवल अपनी बात रख रहे थे बल्कि अपने दैनिक जीवन के अनुभवों को भी बातचीत में शामिल कर रहे थे। प्रधानाध्यापक की कक्षा के बच्चों को गलती करने की कोई गुंजाइश नहीं थी और इसलिए उनका सीखना भय के साये में ही हो रहा था। बच्चे शिक्षिका के काफी करीब लगे क्योंकि एक बच्चा उनकी गोद में भी जाकर बैठ गया था।

बाद के दिनों में प्रधानाध्यापक की कक्षा के कई बच्चे मेरी कक्षा में आकर बैठ जाते और तरह-तरह के सवाल करते। शायद उन्हें समझ आ गया था कि ये मारेंगे नहीं। हालाँकि, प्रधानाध्यापक में भी मैंने काफी बदलाव देखे। अब वे कम-से-कम मेरे सामने तो बच्चों को नहीं मारते थे। बच्चों ने भी बताया कि अब सर मारते तो नहीं हैं, बस कभी-कभी डाँट ज़रूर देते हैं। कुछ बदलाव ही सही, लेकिन हुए तो। आखिर बदलाव धीरे-धीरे ही होते हैं।

दूसरा केस – कुछ समय से मैं एक अन्य स्कूल में एक शिक्षिका के साथ कार्य कर रहा था। शिक्षिका काफी तेज़ स्वभाव की थीं और बच्चों को डरा कर रखती थीं। बच्चों से बहुत ही गुस्से में बोलती थीं, जैसे "ओय, सीधा बैठ, नहीं तो हाथ-पैर तोड़ दूँगी।" मैंने कई बार शिक्षिका से इस विषय पर बात की कि बच्चों को डाँटा-मारा न जाए। डर की वजह से बच्चे शान्त तो बैठ सकते हैं लेकिन सीखना नहीं हो सकता। लेकिन वे हमेशा कहतीं, "अरे सर, ये लोग इसी भाषा को समझते हैं। नहीं तो ये सिर पर बैठ जाते हैं।" कुछ समय ऐसा ही चलता रहा। फिर एक दिन मैं कक्षा में पढ़ाई जा चुकी एक कविता पर बात कर रहा था, जैसे कौन-सी कविता थी? क्या नाम था? किसके बारे में थी कविता? आदि। बच्चों ने चर्चा में खूब बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। हमने कविता को एक बार फिर दोहराया, दो बार मैडम ने भी पढ़ा। फिर मैडम बोलीं, "अब मैंने तुम्हें दो बार कविता सुना दी है, अगर अब भी तुम लोगों से पढ़ते नहीं बनी तो फिर देखना हम तुम्हारी कैसे पूजा करते हैं।"

सभी बच्चों ने बारी-बारी से कविता पढ़ी। इसी क्रम में एक बच्ची महक पढ़ते समय किताब में कम और मैडम

को ज़्यादा देख रही थी, और कविता की पंक्तियाँ सही से नहीं बोल पा रही थी। मैडम ने उसे आँखें दिखाते हुए टोक दिया, "सर जो भी पूछ रहे हैं वो ठीक-से बताना।" उसके बाद तो वह बच्ची केवल मैडम की तरफ ही ताकती रही। उससे बोलते ही नहीं बन रहा था। मैंने बार-बार उसे समझाया, "बेटा, आपसे बनता है। मेरी तरफ देखो। मैं कुछ नहीं बोलूँगा। मैडम भी कुछ नहीं बोलेंगी।" परन्तु वह बच्ची इतनी ज़्यादा घबरा गई थी कि उससे बोलते ही नहीं बन रहा था।

आज उस सहमी हुई बच्ची को देखकर मुझे लगा कि मैडम से बच्चों के साथ उनके व्यवहार के बारे में बात तो करना ही चाहिए। मैंने अपने निजी अनुभवों को साझा करते हुए बहुत ही सावधानी से मैडम के सामने भयमुक्त वातावरण की बात रखी। मैडम भी मेरी बातों पर हाँ-हाँ तो करती रहीं लेकिन साथ ही, कहने लगीं, "सर, मैं मारती नहीं हूँ। बस, बातों से ही यह डर बनाए हुए हूँ। अब थोड़ा डर तो ज़रूरी है न।" मैंने कहा, "नहीं मैडम, डर की आवश्यकता नहीं है। अगर बच्चों को खेलने जितना मज़ा पढ़ने के दौरान भी आएगा तो वे खुशी-खुशी पढ़ेंगे। और थोड़ा-बहुत ऊधम तो चलता है। अगर बच्चे थोड़ा ऊधम न करें तो फिर बच्चे ही क्या?" इसके लिए मैंने सिल्विया ऐश्टन वॉर्नर की पुस्तक *अध्यापक* का एक उदाहरण लिया जिसमें वे बच्चों द्वारा कॉपी फाड़ने से परेशान रहती हैं और

अन्त में बैठकर सोचती हैं कि अगर किताबें सही सलामत रहेंगी तो इसका मतलब है, उनका इस्तेमाल ही नहीं हुआ है। इसी तरह मैंने उन्हें अपनी कक्षा का हवाला भी दिया कि "आपने देखा होगा कि मैंने तीन दिन में एक भी दिन डर का इस्तेमाल नहीं किया तब भी बच्चे ठीक-से बैठे हुए थे।" मेरी बात सुनकर वे मुस्कुरा ज़रूर दीं पर स्पष्ट था कि उनका रवैया अभी भी वैसा ही है।

फिर मैंने बच्ची की दशा की ओर उनका ध्यान खींचा। डर से दिमाग पर पड़ने वाले असर के बारे में उन्हें बताया। साथ ही, एक लेख जो मैं हमेशा अपने साथ रखता था, उनको पढ़कर सुनाया और उस पर बातचीत भी की। पता नहीं कौन-सी बात असर कर गई परन्तु उसके बाद मैंने उनके साथ लगभग एक-डेढ़ साल काम किया लेकिन कभी भी उन्हें बच्चों को डाँटते हुए नहीं देखा। बच्चों ने भी बताया कि मैडम अब मारती नहीं हैं और आप जैसा बताते हैं, वैसे ही पढ़ाती हैं। शिक्षिका के इस व्यवहार परिवर्तन के पश्चात् मैंने उनकी कक्षा में भी कुछ बदलाव देखे, जैसे - सभी बच्चों का तमाम प्रकार की गतिविधियों में प्रतिभाग बढ़ा, बच्चे खुलकर अपने विचार और अनुभव साझा करने लगे, बच्चों ने कुछ कहानियाँ भी गढ़ीं। बच्चों को जब बेझिझक बोलने का मौका दिया जाने लगा तो वे किसी भी विषय पर संवेदनशीलता के साथ, अनुभवों पर आधारित और काफी सोच-विचार के साथ तार्किक ढंग से अपनी बात रखने लगे। कुछ बच्चे जो रोज़ स्कूल नहीं आते थे, वे भी स्कूल आने लगे।

तीसरा केस – एक कक्षा में मैं मुखर वाचन करवा रहा था। तभी दो बच्चियाँ आपस में कुछ बात करने लगीं। मैंने उनसे पूछा, "बेटा, क्या आपको यह गतिविधि पसन्द नहीं आई?" उन्होंने एक स्वर में कहा, "आ रही है, सर।" इस पर मैंने कहा, "ठीक है, हम लोग इस कहानी को सुनते हैं और देखते हैं कि इसमें क्या हो रहा है। जहाँ मैं आपसे कुछ पूछूँ तो आप जवाब देना।" इस पर उन्होंने हामी भरी और हम लोग किताब पढ़ने लगे। इस बीच कक्षा में मौजूद शिक्षिका उन बच्चियों के पास गईं और एक बच्ची के गाल पर धीरे-से थाप लगाई। मैंने तुरन्त कहा, "मैडम, मारिए मत। अब वे बात नहीं करेंगी। हमारी बात हो गई है।" इस पर मैडम कहती हैं, "अरे सर, ये लोग बिना मार खाए नहीं मानते। इनको डराकर ही पढ़ाया जा सकता है।" इस बात पर मैंने अपनी असहमति जताई। "मैडम, मैं भी पिछले कुछ वर्षों से बच्चों के साथ काम कर रहा हूँ। मुझे ऐसी आवश्यकता कभी महसूस नहीं हुई। मैं बच्चों से बात करता हूँ और उन्हें समझाता हूँ तो वे समझ जाते हैं।" इस पर शिक्षिका मुझे लगभग बीच में टोकते हुए ही बोलीं, "मुझे

पढ़ाते हुए 36 साल हो चुके हैं। मेरा मानना है कि इन्हें ज़रा-सी छूट दे दो तो सर पर बैठ जाते हैं। एक बच्ची को ज़रा-सी छूट क्या दे दी, वह हमेशा पेट दर्द का बहाना बनाकर घर चली जाती है। एक दिन मार दूँ तो फिर कक्षा में बैठी रहती है। हम अच्छे से जानते हैं उनके बहानों को। कोई पेट नहीं दुखता।" तब मैंने उनसे पूछा, "क्या आपने इस पर उससे कभी बात की?" उन्होंने कहा, "मुझे पता है सर, वह बहाना बनाती है।"

"तब तो हमें सोचने की आवश्यकता है कि हमें ऐसा क्या करना चाहिए जिससे बच्चे स्कूल से बहाने बनाकर न भागें। कभी उनसे प्यार से बात करने का प्रयास करिए, उनके साथ कुछ गतिविधियाँ करिए।" इसी दौरान एक बच्ची बीच में बोल पड़ी, "सर, हमें तो मैडम का मारना अच्छा लगता है। मार के डर से हम याद करके आते हैं।" इस बात पर मैंने सभी बच्चों से पूछा, "आप लोग बताओ, किस किस को मार खाना पसन्द है?" उस बच्ची के अलावा अन्य कोई भी बच्चा 'हाँ' नहीं बोला।

असल में, वह शिक्षिका की सबसे चहेती और होशियार बच्ची थी। उसने शिक्षिका द्वारा पिटाई को सही मान लिया था। शायद उसे यह भी लगता हो कि वह जो कुछ भी सीखी है, मार के डर से ही सीखी है।

मैंने बोला, "हो सकता है, किसी दिन मेरा स्कूल आने का मन न हो, मुझे ज़बरदस्ती भेजा गया हो। मुझे किसी ने घर पर डाँटा या मारा हो। मुझे भूख लगी हो। कहीं चोट लगी हो या मेरी तबियत ठीक न हो। फिर भी मुझे स्कूल आना पड़ा हो। ऐसी स्थिति में मेरा मन स्कूल में कैसे लगेगा? और उस पर यहाँ भी डाँटा या मारा जाए। तब क्या मेरा मन स्कूल से भर नहीं जाएगा? अब इसके दूसरे पहलू को देखिए। अगर मुझसे स्कूल में थोड़ी बात की जाए और समझाया जाए तो क्या मुझे अच्छा नहीं लगेगा?" इस पर सभी बच्चे एक स्वर में बोले, "लगेगा, सर।"

मैंने पूछा, "तब फिर क्या करना चाहिए, मारना या समझाना?" सभी बच्चे बोले, "समझाना चाहिए।" इस पर मैडम फिर कहती हैं, "नहीं सर, ये बातें कहने में अच्छी लगती हैं। इस तरह बच्चे नहीं मानते।" मैंने उन्हें बोलने दिया। मुझे महसूस हुआ कि इस समय शिक्षिका से इस मुद्दे पर बहस करने का कोई फायदा नहीं है। मैंने उनसे पूछा, "क्या आपको पढ़ने का शौक है?" इस पर उन्होंने हामी भरी। मैंने उन्हें कुछ लेख और किताबें पढ़ने के लिए दीं और उसके बाद बात करने का कहा।

किताब देने के लगभग एक माह पश्चात जब मैं पुन: शिक्षिका से मिला और किताब के बारे में पूछा तो उन्होंने बताया कि उन्हें किताब बेहद पसन्द आई। फिर मैंने उनसे पूछा, "क्या आपको अभी भी लगता है कि

बच्चों को मारकर या डाँटकर ही पढ़ाना चाहिए, तब ही वे सीखेंगे?" इस पर शिक्षिका ने बच्चों की ओर देखते हुए जवाब दिया, "बिलकुल नहीं। बच्चे डर से नहीं सीखते। अब तो मैं आपके सुझाव अनुसार चित्र बनवाती हूँ, कहानियाँ सुनाती हूँ और उनके साथ बात करती हूँ।" यह सुनकर मुझे तसल्ली हुई। हालाँकि, अभी मैं कक्षा का और अवलोकन करूँगा परन्तु अगर उनकी मारने के प्रति दृढ़ता को थोड़ा भी तोड़ सका हूँ तो मैं खुश हूँ।

भय व दण्ड के विकल्प

हमारी प्रक्रियाएँ ही अक्सर सीखने-सिखाने में बाधा बन जाती हैं इसलिए शायद कुछ विकल्प सोचे जा सकते हैं ताकि सीखना और सिखाना सौहार्द्रपूर्ण माहौल में सम्भव हो सके।

- बच्चों से बातचीत करना।
- उनकी समस्याओं को सुनना-समझना व आवश्यक मदद देना।
- ज़रूरत पड़ने पर शिक्षण विधियों में परिवर्तन करना।
- टीएलएम का इस्तेमाल करना।
- सभी बच्चों को कक्षा प्रक्रिया में शामिल करना।
- मारना, डर दिखाना एवं अन्य किसी प्रकार की सज़ा न देना।
- ज़्यादा सक्रिय बच्चों को स्तरानुरूप कार्य देना ताकि उनके पास खाली समय न बचे।

हम ऐसे विभिन्न तरीकों को अपनाकर बच्चों को शारीरिक और मानसिक पीड़ा से बचा सकते हैं। साथ ही, उनका सुचारू रूप से और अच्छे मन से सीखना भी सुनिश्चित कर सकते हैं। शिक्षकों से बातचीत करके, उन्हें भी जागरूक कर सकते हैं ताकि वे मार और डाँट के विकल्प खोज सकें और बच्चों को सही मायनों में सिखा सकें। सरकार ने भी अपने स्तर पर बहुत-से प्रयास किए हैं, जैसे शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 में दण्ड निषेध नियम बनाना या राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में दण्ड के विकल्प सुझाना। हमारे शिक्षक साथियों को यह समझना चाहिए कि बच्चों को भय और दण्ड से पढ़ाने की नहीं बल्कि स्नेह और प्यार से सिखाने की दरकार होती है।

राजाबाबू ठाकुर: एकलव्य, केसला, होशंगाबाद में शिक्षक-शिक्षा के काम में एसोसिएट के रूप में कार्यरत। घूमने और पढ़ने में रुचि।

सभी चित्र: उर्वी: चित्रकार, विज़ुअल कलाकार और डिज़ाइनर हैं। सृष्टि इंस्टिट्यूट ऑफ आर्ट एण्ड डिज़ाइन टेक्नोलॉजी, बैंगलोर से अपनी पढ़ाई पूरी करने के बाद अब वे अपने काम के ज़रिए एनिमेशन, मूविंग इमेजिज़, कहानी कहन और कविता का सहारा लेते हुए शिक्षा, सामाजिक न्याय और संरक्षण को जानने-समझने की कोशिश कर रही हैं।